सामाजिक विज्ञान शिक्षण के संसाधन

✍ वर्षा

हमारे बच्चों के लिए शिक्षक की कही बात अंतिम सत्य नहीं होती। बच्चे हरेक बात को अपने तर्क की कसौटी पर कसते हैं। जो बात उन्हें स्वीकार्य नहीं होती, उसे वे अंत तक स्वीकार नहीं करते। इस तरह बच्चों के सवालों के साथ एक अलग तरह की पेडागॉजी भी आकार लेती चलती है। मसला यह है कि सामाजिक विज्ञान में हम किसी निष्कर्ष तक किस पद्धति से पहुंचते हैं, उस पद्धति के प्रति बच्चों की जिज्ञासा देखने लायक होती है और यही जिज्ञासा बच्चों को भयमुक्त करती है।

मेरे कुछ मित्र शहर की एक गरीब बस्ती के पन्नी बीनने वाले कुछ बच्चों को नियमित रूप से पढ़ाने जाते थे। उन्हें वहां पढ़ाते हुए तकरीबन दो साल बीत चुके थे। उन युवाओं के साथ उन बच्चों का एक अपनापन विकसित हो गया था। वे उन्हें भाषा और गणित पढ़ाते थे।

एक रोज युवाओं की वह टीम अपने नियत समय पर बस्ती में पहुंच गई। पर बच्चे वहां से नदारद थे। थोड़ी देर इंतजार करने के बाद वे बच्चे वहां आ गए। पूछने पर उन्होंने बताया कि आज उन्हें देर इसलिए हो गई क्योंकि आज कबाड़ी (बच्चों का कबाड़ खरीदने वाला) उन्हें उनके माल के कम पैसे दे रहा था। वे लोग उससे झगड़ा करने लगे। तब जाकर उसने उन्हें उनके माल के पूरे पैसे दिए। मेरे मित्र ने उनसे पूछा कि क्या वह मालिक पहले उन्हें पूरे पैसे दे देता था। बच्चों ने जवाब दिया कि पहले हमें यह अहसास तो होता था कि वह कबाड़ी हमें हमारे कबाड़ के भार का पूरा पैसा नहीं देता है, लेकिन हम इतनी निश्चितता से कह नहीं सकते थे। अब तो हमें जोड़–घटाना, गुणा–भाग आ गया है तो वह हमें बेवकूफ कैसे बना सकता है।



जाहिर है, उनको मिले सीमित ज्ञान ने उन्हें इतना समृद्ध कर दिया था कि अब वे अपनी स्थिति के प्रति सचेत हो गए थे और स्वयं की 'कीमत' समझने लगे थे। इसलिए मेरे ख्याल से शिक्षा या ज्ञान का इतना व्यापक उद्देश्य होता है कि वह व्यक्ति, समुदाय व समाज को इस तरह से लैस करे कि वह सकारात्मक रूप से अपनी 'कीमत' करना सीख जाए। बीते समय में शिक्षा ने एक हद तक यह काम किया है। कालांतर में नारी–विमर्श व दलित–विमर्श, सदियों से वंचित इन समुदायों की आवाज बनकर उभरा है। हालांकि मंजिल अभी भी बहुत दूर है।

ऐसे में अगर बात सामाजिक विज्ञान (खासतौर से इतिहास) के अध्ययन की हो तो मामला और भी नाजुक हो जाता है। पाउलो फ्रेरे की मानें तो बच्चों को दी जाने वाली

शिक्षा की सार्थकता इससे तय होती है कि इस ज्ञान के साथ वे अपने आपको समाज से कैसे जोड़ते हैं। इसकी अधिक व्याख्या करें तो उस समय के समाज में मौजूद तमाम अंतर्विरोधों में वे किस तरफ खड़े होते हैं। यही कारण है कि पाउलो फ्रेरे के शिक्षणशास्त्र (पेडोगॉजी) को हम आलोचनात्मक शिक्षणशास्त्र कहते हैं।

इसे थोड़ा और स्पष्ट करें तो व्यक्तिगत रूप से इतिहास के अध्ययन ने मुझे समाज के तमाम अंतर्विरोधों के प्रति प्रश्नाकुल बनाया और अपना पक्ष तय करने में मदद की। इतिहास के अध्येता के रूप में कुछ सवालों के जवाब मिले तो कुछ सवाल आज भी जहन में तैर रहे हैं। हर जवाब से नए सवाल पैदा हुए। इस तरह सवालों की एक लंबी फेहरिस्त है जो मंजिल को हर बार आगे बढ़ा देती है।

ऐसे में माहौल अगर सचमुच लोकतांत्रिक हो तो अध्ययन व ज्ञान को एक नया आयाम मिलता है। हालांकि मुझे यह माहौल बहुत बाद में मिला। अगर यही माहौल बच्चों को शुरू से मिल जाए तो संभवतः सोचने समझने का स्तर ही बदल जाएगा।

इसकी स्पष्ट बानगी दिखाई देती है आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल, भोपाल में। यहां बच्चों को एक लोकतांत्रिक माहौल में पढ़ने का मौका मिल रहा है। यहां बच्चे अपने मन के विषय पढ़ने और सवाल करने के लिए आजाद हैं। जो वे नहीं पढ़ना चाहते उसके लिए इंकार करने की भी उन्हें आजादी है। ऐसे में न केवल बच्चों एवं शिक्षकों के लिए शिक्षा के मायने बदल जाते हैं बल्कि इसका असर शिक्षणशास्त्र (पेडागॉजी) पर भी पड़ता है।

यहां न तो एक, दो, तीन, चार कक्षाएं हैं, न पाठ्यपुस्तकें। न ही पहले से निर्धारित कोई कोर्स हैं। बस हैं तो कुछ थीमेटिक कक्ष। जैसे *'रूम फॉर लैंग्वेज एंड इन्क्वायरी', 'रूम फॉर न्यूमरेसी एंड लॉजिक', 'रूम फॉर चाइल्ड साइंटिस्ट', 'रूम फॉर पर्फार्मिंग आर्ट', 'रूम फॉर विजुअल आर्ट'* और *'रूम फॉर सेंस ऑफ हिस्ट्री एंड सोसाइटी'*। शिक्षक की उपलब्धता के अनुसार बच्चे रोज तय करते हैं कि आज वे किस समय किस रूम में जाएंगे। क्लास के भीतर का माहौल भी बेहद लोकतांत्रिक होता है। ऐसे में पेडागॉजी का लचीला होना बहुत लाजिमी है।

मैं, इत्तेफाकन आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल से



जुड़ी और यहां पर शुरू हुआ अपने द्वारा पढ़े, समझे और अहसास किए हुए इतिहास और समाज का पुनर्पाठ। विगत दो वर्षों में छोटे–छोटे बच्चों के साथ उनके तमाम सवालों से गुजरना काफी चुनौतीपूर्ण रहा। इन सवालों पर हुई चर्चाओं ने बच्चों को चाहे जो भी बताया हो पर मैं एक नई तरह से इतिहास और समाज को समझ रही हूं। बच्चों की दृष्टि से उन सवालों को पकड़ रही हूं जो बेहद मासूम होने के साथ–साथ बहुत गंभीर भी हैं।

जब मैं आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल से जुड़ी, उस वक्त स्कूल का सबसे बड़ी उम्र का समूह (गिलहरी समूह) मात्र छः वर्ष के आसपास के बच्चों से बना हुआ था। स्कूल इन बच्चों के साथ–साथ लगातार आकार ले रहा है। यह संयोग ही है कि इस समूह के साथ स्कूल का पात्र एवं द्रव्य का द्वंद्वात्मक रिश्ता–सा बन गया है। इसमें कभी बच्चे पात्र बनते हैं और स्कूल उनके अनुसार द्रव्य के रूप में आकार ले लेता है और स्वाभाविक है कि कभी स्कूल पात्र होता है और बच्चे उसमें ढलने वाले द्रव्य। आश्चर्यजनक रूप से हम शिक्षक हर बार द्रव्य होते हैं। कई बार हमें पात्र एवं द्रव्य दोनों की भूमिका निभानी पड़ती है।

खैर, इन नन्हें–नन्हें बच्चों के सवालों के साथ अनौपचारिक बातचीत करते हुए 2012–13 का सत्र बीत गया। देश–दुनिया समाज और तमाम सारे रहस्यों के प्रति



बच्चों के ढेर सारे सवाल देखते हुए हमने तय किया कि सत्र 2013–14 में बच्चों के लिए सामाजिक विज्ञान की कक्षा शुरू करेंगे। पहले दिन से बच्चे इस क्लास में बहुत उत्साह से आए।

क्लास की शुरुआत हमने 'सामाजिक विज्ञान किसे कहते हैं' इस पर चर्चा करके की। 'समाज क्या है' इस पर बच्चों के साथ बहुत सारी बातचीत हुई। अंततः यह समझदारी बनी कि हम अकेले नहीं जी सकते, हमें जीने के लिए समूह की जरूरत होती है और उसी सामूहिकता की जरूरत से समाज बना है। बच्चों ने सवाल किया कि हमारे नाम क्यों होते हैं। समाज में क्या कोई ऐसा व्यक्ति हो सकता है जिसका नाम न हो। चर्चा के बाद यह बात सामने आई कि 'नाम' होने का मतलब ही यह है कि हमें एक–दूसरे की जरूरत होती है।

फिर हमने बात की कि सामाजिक विज्ञान में कौन–कौन से विषय आते हैं। इतिहास, भूगोल, राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र आदि। बच्चों के अधिकांश सवाल इतिहास और समाज से जुड़े होते हैं इसलिए हमने तय किया कि हम अपनी क्लास को नाम देंगे 'समाज एवं इतिहास बोध की कक्षा' (Room for Sense of History and Society)। हमने इतिहास से शुरुआत करने का तय किया।

सबसे पहले हमने बातचीत की कि 'इतिहास किसे कहते हैं।' लगभग सारे बच्चों को यह पता था कि बीती हुई बातों को इतिहास कहते हैं। क्लास में बीहू ने एक कहानी सुनाई– 'इंदौर में एक राजा होल्कर थे। एक बार उन्होंने दुकान, मॉल आदि बनवाने का सोचा। उसके रास्ते में शिवजी का एक पुराना मंदिर था। राजा ने उसे तोड़ने को कहा। जैसे ही मजदूरों ने उस पर गैंती चलाई, उसमें से एक नाग–नागिन का जोड़ा निकला। उसे पकड़ने के लिए सपेरे को बुलाया गया। जब वह आया तो उसे हजारों नाग–नागिन के जोड़े दिखाई दिए। तब राजा ने मंदिर तोड़ने से मना कर दिया।'

बीहू के अनुसार यह कहानी तीन हजार साल पुरानी है। (जबकि राजा होल्कर का समय बहुत बाद का है) बीहू ने यह कहानी अपने नाना से सुनी थी। मैंने पूछा कि नाना ने किससे सुनी थी। उसने कहा कि नाना ने अपने नाना से, उनके नाना ने उनके नाना से.......। कहानी में इतिहास और गल्प दोनों थे।

कहानी के माध्यम से हमने उस कहानी में से इतिहास क्या है और काल्पनिक कहानी क्या है, इस पर चर्चा की। प्रकृति ने पूछा कि ये कैसे पता चलेगा कि राजा होल्कर सचमुच थे। फिर राजा होल्कर के होने के क्या–क्या प्रमाण हो सकते हैं इस पर बात हुई। यह बात हुई कि इंदौर में राजा होल्कर का किला हो सकता है। उसमें मौजूद बहुत सारे प्रमाण हमें बता सकते हैं कि राजा होल्कर थे। इसके अलावा उनके दरबार के बहुत से दस्तावेज उपलब्ध हैं। जमीन के रिकार्ड मौजूद हो सकते हैं। इन सबके माध्यम से हम राजा होल्कर के बारे में जानकारी एकत्र कर सकते हैं। फिर कई तरह से बात करके बच्चों के सामने यह बात रखी कि अतीत में जिन चीजों के लिए हम सुबूत दे सकते हैं उसे हम इतिहास कहते हैं।

बच्चों के मन में दुनिया के रहस्यों को लेकर बहुत

सारे सवाल रहते हैं। खासतौर से यह दुनिया कैसे बनी। इंसान कैसे बना। इन सबको लेकर उनकी अपनी अवधारणा है। भगवान को लेकर भी उनके मन में बहुत सी जिज्ञासा थी। चमत्कारों को लेकर उनके मन में बहुत सी कहानियां हैं। धीरे–धीरे उनसे इन सारे विषयों पर चर्चा होने लगी।

इसके बाद की कक्षाओं में हमने 'ब्रह्मांड की उत्पत्ति' विषय पर बातचीत की और उन्हें एक 15 मिनट की फिल्म दिखाई। आश्चर्य की बात है कि इतने जटिल विषय पर बच्चों ने पूरी तरह एकाग्र होकर सुना और उस पर ढेरों सवाल किए। ब्रह्मांड की उत्पत्ति की चर्चा के बाद एक बच्चे ने पूछा कि जब ब्रह्मांड बनने की कहानी इतनी वैज्ञानिक है तो लोग ये क्यों कहते हैं कि दुनिया भगवान ने बनाई। अंबर के लिए बिगबैंग हमेशा गुत्थी बना रहता है। उसे डर भी लगता है कि अगर फिर से बिगबैंग हुआ तो हम सभी इसमें खत्म हो जाएंगे। फिर तो बिगबैंग से लेकर सर्न प्रयोग के गॉड पार्टिकिल्स पर भी बात हुई। और इस पर भी कि ब्रह्मांड की उत्पत्ति के रहस्य पर से परदा अभी पूरी तरह से नहीं उठा है इस पर सभी वैज्ञानिक एकमत नहीं हैं। शायद आप लोग आगे चल कर इसमें कुछ मदद कर सकें।

ईश्वर के अस्तित्व को लेकर बच्चे काफी जिज्ञासु रहते हैं। इसको लेकर अपनी–अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि और सामाजिक अनुभव के आधार पर वे अपनी राय रखते हैं। लेकिन वे इस विषय पर खासतौर पर मेरी राय जानना चाहते थे। इस प्रश्न पर मैंने कहा कि मैं व्यक्तिगत रूप से ईश्वर को नहीं मानती पर इस विषय में आप अपने दिमाग खुले रखो और आगे चल कर खुद तय करो कि ईश्वर वाकई है या नहीं।

इसके बाद शुरू हुई इंसान के जन्म की कहानी। बच्चों ने इस कहानी में बहुत दिलचस्पी दिखाई। जल में जीवन पैदा होने से लेकर बंदर और फिर बंदर से इंसान तक हमने काफी दिनों तक मानव जीवन के विकास पर चर्चा की। उनके ढेरों सवाल आए, फिर उन पर चर्चा हुई। इस क्रम में हमने बच्चों के साथ एक फिल्म (Quest for fire) देखी। इस फिल्म को दिखाने का उद्देश्य यह था कि बच्चे यह विजुअलाइज़ कर पाएं कि हमारे आदिम पूर्वजों का जीवन कैसा था। भूमिका ने कहा कि हमारे पूर्वजों ने आग को बचाने के लिए कितनी मेहनत की। इसी वजह से आज हम जिंदा हैं। इसलिए हमें इस दुनिया को बचाना चाहिए ताकि हमारे बच्चे आसानी से जी सकें। यह एक ऐसा तार्किक निष्कर्ष था जिसे हम वयस्क भी अक्सर नहीं समझ पाते।

पार्थ ने सवाल किया कि जब हमारे पूर्वज पेड़ पर रहते थे तो हम घर बना कर कब और कैसे रहने लगे। फल–सब्जी और अनाज कैसे उगाने लगे। पार्थ के सवाल से इतिहास के मार्ग पर आगे बढ़ने में मदद मिली। हमने वानर से इंसान बनने की यात्रा में सामूहिक श्रम की भूमिका पर चर्चा की। किस तरह मानवता खाद्य संग्राहक से खेती और पशुपालन तक पहुंची, इसके विकास पर भी चर्चा हुई। इस तरह हर क्लास में नए सवाल आते और उन सवालों से अगली क्लास का विषय तय होता।



इंसान बात कैसे करने लगा, इस सवाल को समझने के क्रम में हमने एक ऐक्टिविटी की जिसमें बच्चों समेत सारे लोगों को उस युग का एक हिस्सा बनना था जहां अभी भाषा विकसित नहीं थी। उसमें सभी को एक साथ रहना था पर आपस में बोलना नहीं था। केवल इशारों से और आवाज निकालकर अपनी बात करनी थी। इसमें हमने बच्चों को अभिनय के द्वारा अपनी बात को संप्रेषित करने का प्रयास किया। धीरे–धीरे बच्चों को यह बात समझ में आई कि सामूहिक श्रम के कारण आपस में संवाद की जरूरत से भाषा का विकास हुआ होगा।

सौभाग्य से हम जहां रहते हैं (यानी भोपाल) उसके इर्दगिर्द हमारे आदिम पूर्वजों की अनगिनत पदचाप गूंज रही हैं और आसपास के जंगलों में पहाड़ी गुफाओं में उनके द्वारा उकेरे चित्र मिल जाते हैं। भीमबैठका उनमें से एक है। हमने बच्चों से उसके बारे में चर्चा की और कहा कि कभी हम वहां जा सकते हैं। बच्चे काफी उत्साहित हो गए। फिर हम बच्चों के साथ भीमबैठका गए।

वहां जाने से पहले क्लास में ही हमने भीमबैठका के बारे में चर्चा की। जैसे इसका नाम भीमबैठका क्यों पड़ा। इसके माध्यम से उनसे थोड़ी चर्चा महाभारत, कौरवों और पांडवों के बारे में भी हुई, भीम कौन थे आदि। इस पर चर्चा करते हुए हमने बात की कि इसमें इतिहास क्या है और कल्पना क्या है।

भीमबैठका पहुंचते ही द्वार पर ही बच्चों और हमारे इतिहासबोध का सामना हुआ समाज की आम चेतना में रच–बस चुके इतिहास बोध से। बिल्कुल प्रवेश द्वार पर हमारा सामना आज के इंसान की चेतना द्वारा बनाई हुई कुछ मूर्तियों से हुआ। उनमें एक औरत कुछ पीस रही है और पास में ही एक बच्चा खड़ा है और एक पुरुष महोदय दीवार पर चित्र बना रहे हैं। जबकि ऐतिहासिक रूप से यह कहीं तय नहीं है कि गुफाओं की दीवारों पर अंकित वे चित्र केवल पुरुषों ने बनाए होंगे। या महिला उस समय से ही घरेलू चक्की पीस रही है। बच्चों के दिमाग में वहीं से सवाल कुलबुलाने लगे। एक बच्ची ने पूछा क्या तभी से मम्मी लोग खाना बना रही हैं। भूमिका ने पूछा कि क्या उस समय मम्मी लोग कपड़े नहीं पहनती थीं आदि, आदि।

गुफाओं की दीवारों पर आदि पूर्वजों के बनाए ढेरों चित्र बने थे। समय के हिसाब से उनके रंग सफेद, काले और गेरूआ थे। छोटे, बड़े सभी की रुचि जाग गई थी। सभी ध्यान से उन चित्रों को देखने लगे। हम एक बड़ी–सी चट्टान के नीचे रुके, जिस पर ढेरों चित्र अंकित थे। बच्चे और बड़े सभी अपनी–अपनी ड्राइंग शीट और पेंसिल लेकर उन चित्रों को बनाने लगे।

भीमबैठका भ्रमण ने बच्चों के मानस में मानवता की कहानी को एक नया आयाम दिया। उस समय के समाज, संस्कृति, कला आदि को बच्चे ग्रहण कर पा रहे थे। सबसे बड़ी बात, बच्चे इतिहास के उस दौर को महसूस कर पा रहे थे। बच्चे आपस में बात कर रहे थे। वे इस जगह पर बैठते होंगे....। यहां सोते होंगे.....। यहां आग जलाते होंगे....आदि।



भीमबैठका भ्रमण के बाद हमने तय किया कि इतिहास की चर्चा को कुछ दिनों तक विराम देकर किसी नए विषय पर बात की जाए। तय हुआ कि भूगोल पर बात की जाए। विषय से परिचित कराते हुए सूरज को केंद्र में रख कर दिशाओं पर बात की। इसी चर्चा में बच्चों से कहा कि

वे तीन दिन तक लगातार सूर्योदय देखें और क्लास में आकर उसके बारे में बताएं कि सूरज उनके घर से किस ओर उगता है। और उसका चित्र भी बनाएं। आश्चर्यजनक रूप से, सुबह देर तक सोने के शौकीन बच्चे भी अलार्म लगाकर या घर के बड़ों की मदद से सुबह जल्दी उठे और उगते हुए सूरज की दिशा और सौंदर्य को देखा, उसका चित्र बनाकर लाए और उस पर बातचीत की।



एक अन्य गतिविधि में बच्चे स्वयं बारी–बारी से सूर्य और विभिन्न ग्रह बने और एक–दूसरे से बचते हुए अपनी जगह पर घूमते हुए उन्होंने सूरज के चक्कर लगाए। बच्चों को बड़ा मजा आया। ऐसा करते हुए क्लास रूम की छोटी जगह में वे आपस में टकरा जाते। ऐसे में उनका स्वाभाविक सवाल था कि चक्कर लगाते हुए हम आपस में टकरा जाते हैं, प्लैनेट्स आपस में क्यों नहीं टकराते। जाहिर है बच्चों का ये सवाल हमें अध्ययन के उच्चतर धरातल पर ले जाता है। जिसका जवाब देने के लिए मुझे भी तैयारी की जरूरत थी।

इसके अलावा बच्चों को ग्लोब और नक्शे पर विभिन्न देशों को ढूंढ़ने में बड़ा मजा आया। हालांकि बच्चे अभी भूगोल की पेचीदगियों से थोड़ा दूर थे। दुनिया–देश–राज्य और शहर की चौहद्दियों को समझना इतने छोटे बच्चों के लिए आसान नहीं था। एक बच्ची का चेहरा उस वक्त उतर गया जब उसे पता चला कि उसके भोपाल से भी बड़ी बहुत–सी जगहें हैं। वरना उसे तो लगता था कि भोपाल सबसे बड़ा है।

इसके अलावा सत्र के आरम्भ में ही बच्चों को एक प्रोजेक्ट दिया था– 'मेरा इतिहास'। इसमें बच्चों को अपना इतिहास खुद लिखना था। इसमें बच्चों को अपनी मां और पिता की तरफ का इतिहास लिखना था। अपने और अपने मां–पिता, नानी–नाना, दादी–दादा के बारे में लिखना था और उनसे जुड़ी पुरानी तस्वीरें इकट्ठी करनी थीं। सत्र का अंत होते–होते लगभग सभी बच्चों ने इस प्रोजेक्ट को बखूबी पूरा किया। सीसीई बैठक के दौरान एक बच्ची के पिता ने कहा, 'भई इस इतिहास ने तो हमें काफी परेशान किया। हमारी बच्ची ने तो सवाल कर–करके हमें तंग कर दिया।' लेकिन हमें लगा कि शायद 'समाज व इतिहास बोध कक्ष' की यही सफलता थी।

इस तरह हमने देखा कि इस पूरे सत्र में हर दिन हम बच्चों के साथ विकसित होते रहे। हमारे बच्चों के लिए शिक्षक की कही बात अंतिम सत्य नहीं होती। बच्चे हरेक बात को अपने तर्क की कसौटी पर कसते हैं। जो बात उन्हें स्वीकार्य नहीं होती उसे वे अंत तक स्वीकार नहीं करते। इस तरह बच्चों के सवालों के साथ एक अलग तरह की पेडागॉजी भी आकार लेती चलती है। मसला यह है कि सामाजिक विज्ञान में हम किसी निष्कर्ष तक किस पद्धति से पहुंचते हैं, उस पद्धति के प्रति बच्चों की जिज्ञासा देखने लायक होती है और यही जिज्ञासा बच्चों को भयमुक्त करती है।

वर्षा : आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल 189, इंडस एंपायर त्रिलंगा, भोपाल, मध्य प्रदेश।